Vol. 12, Issue: 03, March: 2023
ISSN: (P) 2347-5412 ISSN: (O) 2320-091X

हिन्दी के नवजागरणकालीन साहित्य में चित्रित दलित जीवन: उपन्यासों के विशेष संदर्भ में

DOI: https://doi.org/10.63345/ijre.v12.i3.1

डॉ. विद्या चरण

असिस्टेंट प्रोफेसर - हिंदी

राजकीय महाविद्यालय बक्खा खेड़ा, उन्नाव

हिन्दी के नवजागरणकालीन साहित्य में दलित और अछूतों की समस्या प्रमुखता से नहीं आयी है। 'स्वामी अछूतानन्द' को छोड़कर कोई दलित नेता आगे आते नहीं दिखाई पड़ते। फिर भी भारतेन्दु मंडल के कुछ साहित्यकारों में जाति और वर्ण-व्यवस्था की संकीर्णता के विरुद्ध मुखर चेतना दिखाई पड़ती है, किन्तु यह मुखर चेतना भारतेन्दु युग के उपन्यासों में बहुत कम व्यक्त हुई है। अधिकांशतः कविता, निबन्ध और नाटकों में व्यक्त हुई है। बीसवीं शताब्दी तक आते-आते दलित जागरण को साहित्य में व्यापक स्थान मिला।

हिन्दी साहित्य में नवजागरण भारतेन्दु के आगमन से माना जाता है। भारतेन्दु ने एक तरफ हिन्दी खड़ी बोली को गद्य-पद्य की भाषा के रूप में प्रतिस्थापित करने की पैरवी की तो दूसरी ओर साहित्य को व्यापक सामाजिक सरोकारों से जोड़ने की कोशिश की। इस कोशिश का परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीयता, सामाजिकता आदि से जुड़े हुए मुद्दे साहित्य की विभिन्न विधाओं, खासकर कविता और निबन्ध में जगह प्राप्त करने लगे। लेकिन दलित और जाति संबंधी मुद्दे सिर्फ सहानुभूति तक सीमित थे। उपन्यासों में दलित और निम्न जातियों के प्रसंग मुख्य रूप से नहीं बल्कि आनुषंगिक या अवान्तर रूप में आये हैं। जो अवान्तर प्रसंग हैं उनमें विमर्श या दलित क्रान्ति जैसे विचार का अत्यन्त अभाव है। सिर्फ सहानुभूति और एक सामाजिक समस्या के रूप में दलित या निम्न जातियों के प्रसंग आये हैं।

हिन्दी की अपेक्षा मराठी साहित्य में दलित विमर्श की चेतना ज्यादा मुखर है। ज्योतिबा फुले ने अपने पंवाड़ों में ब्राह्मणों के नकारापन का वर्णन किया है–ब्राह्मण अध्यापक पर लिखे पंवाड़ा में फुले लिखते हैं–

"प्रथम ब्राह्मण पैदा हुआ हिन्दुस्थान में
दिखता शूद्र जैसा निरन्तर
स्नान पूजा-पाठ नित तिलक माथे पर
उठाते गोद में वेश्याओं को
सुनना वेदों का शूद्रों को बंद किया
लेकिन पढ़ाया अंग्रेजों को
पांव धुलवा कर शूद्र को तीर्थ देते।
मुंह पान करते यवनी का
ज्ञानहीन शूद्र लज्जाहीन हुआ
जूते उठाए ब्राह्मणों के।।

हाथ के जूते बीच में ही कहीं न रखो
खोज करो सच्चा जोति कहे।।"

महात्मा फुले की प्रख्यात रचना 'गुलामगीरी' है जिसकी प्रस्तावना उन्होंने अंग्रेजी और मराठी में अलग-अलग लिखी थी। अंग्रेजी प्रस्तावना में उन्होंने होमर के इस वाक्य को उद्धृत किया है– "वह दिन जो इंसान को गुलाम बनाता है उससे उसके आधे गुण छीन लेता है।" 'गुलामगीरी' को उन्होंने ब्राह्मणवाद के आवरण के अंदर शिष्ट अंग्रेजी राज में 'गुलामगीरी' का नाम दिया है। इसमें ब्राह्मणवाद पर जितना तीव्र प्रहार किया गया है, उतना किसी ग्रंथ में नहीं मिलता। यह संवाद शैली में लिखी गयी रचना है। इसमें सवाल धोंडिबा करता है और जवाब जोतिबा फुले देते हैं। इस पुस्तक का समर्पण उन्होंने अमेरिका के उन लोगों को किया है जिन्होंने काले गुलामों की मुक्ति के लिए काम किया था।

"साहित्य में पहली बार इसी पुस्तक में भारत के शूद्र-अति शूद्रों की गुलामी की तुलना हब्शी काले गुलामों से की गई है। यह वह समय था जब अमेरिका के नीग्रो गुलामों के जीवन पर श्वेत लेखिका स्टोव का उपन्यास 'अंकल टाम्स केबिन'

Vol. 12, Issue: 03, March: 2023
ISSN: (P) 2347-5412 ISSN: (O) 2320-091X

(1852) आ चुका था। इस उपन्यास में अश्वेत गुलामों की हृदयविदारक पीड़ा का वर्णन था। जोतिबा फुले की 'गुलामगीरी' पर इस उपन्यास के प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता।"

जोतिबा फुले की रचनाएँ आज एक शताब्दी बाद भी ताजा और प्रासंगिक हैं। मराठी साहित्य का यह कालखण्ड हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग कहलाता है। जोतिबा फुले की तरह तीव्र प्रतिरोध वाली कविताएँ या दलित जीवन को केन्द्र में रखकर लिखी कोई पुस्तक प्राप्त नहीं होती। भारतेन्दु युग राष्ट्रीय चेतना के विकास का युग है। राष्ट्रीय चेतना के विकास में सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। अतः धार्मिक-सामाजिक समस्याओं को उस समय के साहित्य में पर्याप्त जगह मिली। हिन्दी साहित्य के इस कालखण्ड में धार्मिक-सामाजिक समस्याओं का उल्लेख इस रूप में प्राप्त होता है–

बाल-विवाह एवं बेमेल विवाह, बहु विवाह, विधवाओं की दयनीय दशा, वेश्यावृत्ति, देवदासी प्रथा, बहुजातिवाद, मद्यपान तथा मांसाहार, पर्दा प्रथा, नारी अशिक्षा, अंधविश्वास, छुआछूत, पाखंड एवं दंभ, भूत-प्रेत तथा बहुदेववाद, बलिप्रथा।

बहुजातिवाद और छुआछूत इन दो समस्याओं को लेकर भारतेन्दु युग का साहित्य मुखर है। इन समस्याओं को लेकर सबसे पहले कविता और निबंध विधा मुखर हुई, तत्पश्चात् उपन्यास। तत्कालीन साहित्यकार इस बात को ठीक से समझता है कि राष्ट्रीयता के विकास में जातीय एकता का अत्यधिक महत्व है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भी किसी ऐसे साहित्यकार का साक्ष्य हिन्दी साहित्य में नहीं मिलता जिसने सिर्फ जाति-पाति को केन्द्र में रखकर कोई उपन्यास लिखा हो। जात-पांत के प्रति अवहेलना प्रकट करती हुई छोटी-छोटी कविताएँ अवश्य मिलती हैं। भारतेन्दु और बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' की कुछेक कविताएँ जात-पांत से सम्बन्धित प्राप्त होती हैं जिनका उल्लेख समीचीन होगा।

"रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन माहिं घुसाए।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रकट चलाए।
जाति अनेकन करि ऊंच अरु नीच बनायो।
खान-पान संबंध सबनि सों बरजि छुड़ायो।"

'प्रेमघन' अनेक मतों में विभक्त एवं अनेक अवगुणों में विलीन हुई जाति का वर्णन एक कविता में करते हैं–

"मिथ्याडंबर दम्भ, द्रोह फूट फैलाते
अपने मुख से अपने को सबसे उत्कृष्ट बताते।।

प्रचलित हाय अंध परिपाटी पर तुम चलते जाते
आर्य वंश को लज्जित करते हुए कुछ भी नहीं लजाते।। "

इसी प्रकार नाटकों और निबंधों में भी भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने छुआछूत का विरोध किया है। भारतेन्दु ने बल्कि विशेषकर अपने लेखन में बहुजातिवाद और छुआछूत का विरोध किया है जबकि अन्य साहित्यकारों ने यदा-कदा। भारतेन्दु अपने निबंध 'मेंहदावल की यात्रा' में लिखते हैं–

"सरयूपार के ब्राह्मण बड़े विचित्र हैं। मांस मछली सब खाते हैं। कुएं के जगत पर एक आदमी जो पानी भरता हो, दूसरा आदमी चला आवै तो अपना घड़ा फोड़ डाले और उससे घड़े का दाम ले। घड़ा कोई कहै तो घड़ा छू जाये क्योंकि घड़ा मुसलमानी लफ्ज़ है, दाल कहे तो छू जाय क्योंकि दाल मुसलमानी है। .....और मज़ा यह कि ताजिये को सब मानते हैं।"

जब समाज में पाखंड, भ्रष्टाचार और कुरीतियों आदि का प्रचलन मन्दिरों और तीर्थ स्थलों पर बेतहाशा बढ़ने लगा तो उसकी आलोचना विभिन्न माध्यमों (कविता, निबन्ध, नाटक, उपन्यास आदि) से युगीन साहित्यकारों ने प्रस्तुत की। यह जरूर है कि धर्म आदि के बहाने ही युगीन साहित्यकारों ने छुआछूत या जातिवाद की समस्या को उठाया। इस युग के उपन्यासकारों के मन में स्वच्छन्द प्रेम निषेध के प्रति असंतोष तो था किन्तु सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने अथवा उनका विरोध करने का साहस उनमें नहीं था। इसके पीछे जाति-पांति की भावना ही प्रबल रूप से काम कर रही थी।

भारतेन्दु युग में यद्यपि उपन्यास विधा का अपेक्षाकृत कम विकास हुआ, फिर भी इस काल के सभी उपन्यासकारों ने तत्कालीन समाज में प्रचलित धार्मिक और सामाजिक विषमताओं का खंडन कर व्यापक एवं सच्चे मानव-धर्म को स्थापित करने का प्रयास किया है।

1881 ई. में राधाकृष्ण दास ने 'निस्सहाय हिन्दू' नामक उपन्यास की रचना की, जो नौ वर्ष बाद 1890 ई. में प्रकाशित हुआ। कथ्य की दृष्टि से 'निस्सहाय हिन्दू' में अद्भुत नवीनता है। इसका केन्द्रीय विषय गोवध-निवारण है, पर इसके बहाने से कथाकार ने साम्प्रदायिक सद्भाव, बाल विवाह, विधवा

Vol. 12, Issue: 03, March: 2023
ISSN: (P) 2347-5412 ISSN: (O) 2320-091X

विवाह, विदेशी यात्रा की मनाही, भूत-प्रेतों की पूजा, छुआछूत की भावना आदि समस्या को भी उजागर किया है। मुसलमानों को भी हिन्दू अस्पृश्य के रूप में देखते रहे हैं। उन्हें म्लेच्छ, मांसभक्षक, चाण्डाल एवं कसाई के रूप में हिन्दू समाज देखता रहा है। राधाकृष्ण दास ने पात्र चयन में तथा कथा बुनने में प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

'निस्सहाय हिन्दू' हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें मुस्लिम समाज का अंकन किया गया है। पहली बार मुस्लिम पात्रों का समावेश 'निस्सहाय हिन्दू' में देखने को मिलता है। जो लोग हिन्दू उपन्यासों में मुस्लिम पात्रों के न होने का रोना रोते हैं, उन्हें 'निस्सहाय हिन्दू' पढ़ना चाहिए।

समकालीन मुस्लिम समाज दो वर्गों में विभक्त था। एक वर्ग कट्टरपंथी धर्मान्ध मुसलमानों का था, जिसके नेता अभिजात वर्ग के मुसलमान थे। मुसलमानों के अनुदार धार्मिक नेता, मुल्ला आदि भी इसी वर्ग के अंग थे। इस वर्ग की अंग्रेज शासकों से साँठगाँठ थी। दूसरा वर्ग राष्ट्रीय विचारधारा से युक्त उदार मुसलमानों का था जिसमें मौलवी अब्दुल अजीज जैसे लोग थे। इस वर्ग के मुसलमान हिन्दुओं से द्वेषभाव नहीं रखते थे और देशहित के कार्यों में उनके साथ सहयोग करते थे। हिन्दुओं के साथ उनकी मैत्री और पारिवारिक सम्बन्ध होते थे।

मौलवी अजीज, मदनमोहन तथा माधवप्रसाद के साथ देशहित के लिए स्थापित 'भारत हितैषिणी सभा' के सदस्य हैं। इस संबंध में गोपाल राय लिखते हैं–
"उपन्यास के आरम्भ में ही कथानायक मदनमोहन 'भारत हितैषिणी सभा' में व्याख्यान करते हुए हिन्दू समाज की अधोदशा का उल्लेख एक छंद के रूप में करता है। इस छन्द में हिन्दू समाज के शैव, शाक्य, वैष्णव आदि सम्प्रदायों तथा जातियों में विभाजन, खान-पान में भेदभाव, जन्मपत्री मिलाकर शादी-ब्याह के निर्णय, बालविवाह, बहुविवाह, विधवाविवाह निषेध, विदेश यात्रा की मनाही, अनेक प्रकार के देवी-देवताओं और भूत-प्रेतों की पूजा, छुआछूत की भावना आदि की आलोचना की गयी है, जो समकालीन नवजागरण आन्दोलन से प्रेरित है। कथा में आगे चलकर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पिछड़ेपन को समाप्त करने के लिए अन्ध परम्परागत विचारों का विरोध तथा आधुनिक सांचे को अपनाने का जैसे अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान तथा पुरानी विपणन-प्रणाली और रहन-सहन के गन्दे तरीके को छोड़कर अंग्रेजों की विपणन प्रणाली और साफ-सुथरे रहन-सहन को ग्रहण करना आदि आह्वान भी किया गया है।"

कथा के पात्रों में ऐसे वृद्धजन हैं, जो अंग्रेजी शिक्षा, पढ़े-लिखे युवकों द्वारा छुआछूत न मानने, समाज सुधार के लिए स्थापित सभाओं में शामिल होने आदि को लेकर डांटते रहते हैं। इससे पुरानी और नयी पीढ़ी के संघर्ष की भी झलक मिलती है, जो प्रत्येक युग की सच्चाई है।

हिन्दी उपन्यास का यह विकास-काल गहरे नैतिक आग्रहों और दबावों का काल है। प्रेम भावना को उपन्यास के लिए लगभग एक वर्जित क्षेत्र माना जाता था। युवा मानसिकता को दीक्षित करके संस्कारों का निर्माण ही इस काल के सामाजिक उपन्यासों का एक मात्र लक्ष्य था। 'प्रेम को केन्द्र में रखकर लिखे गये उपन्यासों में इस बात की सावधानी बरती गयी है कि प्रेमी-प्रेमिका ऊँची जातियों से ही हैं, नीचे की जातियों से नहीं आए हैं। समान जाति या अमीरी-गरीबी को आधार बनाकर ही प्रेमपूर्ण रचनाएं की गयी हैं। जाति तोड़ो जैसी संभावनाएँ उपन्यासों में दूर-दूर तक देखने को नहीं मिलती। ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामा-स्वप्न' (1888 ई.) एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामा-स्वप्न' श्यामसुन्दर नामक एक क्षत्रिय युवक और श्यामा नामक एक ब्राह्मण लड़की के प्रेम को केन्द्र में रखकर विकसित होता है। पड़ोस का साहचर्य-भाव ही अनजाने ही उनके मन में प्रेम बनकर समा जाता है। श्यामसुन्दर पारिवारिक परिचय का लाभ लेकर श्यामा से घनिष्ठता बढ़ाने का अवसर निकाल लेता है। कवि होने के कारण अपनी कविताओं और बातों से वह श्यामा को अभिभूत कर पाने में सफल होता है। छोटी-बड़ी बाधाओं के बीच श्यामा की छोटी बहन की मध्यस्थता और सहयोग से, यह प्रेम काफी दूर तक जा पहुँचता है। आत्महत्या की धमकी देकर वह श्यामा को अपने और निकट ले आता है जिसकी परिणति अंततः श्यामा के गर्भवती हो जाने में होती है। लेकिन सामाजिक रूढ़ियाँ इस अंतर्जातीय विवाह की अनुमति नहीं देतीं। प्रगाढ़ प्रेमानुभूति और सामाजिक रूढ़ियों का द्वन्द्व उपन्यास में गहरी करुणा के साथ अंकित है। उपर्युक्त उपन्यास में जाति की समस्या उठायी गयी है। भले ही ऊँची जाति से ही नायक-नायिका आते हैं, किन्तु उपन्यास में वर्णित अन्तर्जातीय विवाह ने यह अवश्य बतला दिया कि जातिवाद की समस्या एक जटिल समस्या है।

Vol. 12, Issue: 03, March: 2023
ISSN: (P) 2347-5412 ISSN: (O) 2320-091X

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कई महत्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित होते हैं। वे समाज सुधार से संबंधित अनेक मुद्दे उठाते हैं किन्तु छुआछूत और जाति-पांति को लेकर अवान्तर रूप में भी प्रसंग उनमें न के बराबर ही आता है। उस समय के महत्वपूर्ण उपन्यासों में 'देवरानी जेठानी की कहानी (1870 ई.), वामा शिक्षक (1872 ई.), भाग्यवती (1877 ई.), परीक्षागुरू (1882 ई.), नूतन ब्रह्मचारी (1886 ई.), सौ अजान एक सुजान (1892 ई.), धूर्त रसिकलाल (1899 ई.), स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी (1899 ई.), ठेठ हिन्दी का ठाठ (1899 ई.) शामिल हैं। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासों के विद्वानों ने जो तीन कोटियाँ बनायी हैं– सामाजिक, ऐतिहासिक और घटनात्मक – उनमें उपरोक्त सभी उपन्यास सामाजिक कोटि के हैं।

"वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अनेक दृष्टियों से भारतीय इतिहास का अत्यन्त उत्तेजना पूर्ण, अशांत और सामाजिक संक्रमण का काल था। 1857 ई. के स्वाधीनता युद्ध के बाद, महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र के बावजूद सामान्य जनता में ब्रिटिश साम्राज्य की क्रूर दमनकारी नीतियों के फलस्वरूप विरोध और घृणा का भाव गहराया था। अंग्रेज अधिकारियों और उनके परिवारों की रक्षा के पुरस्कार स्वरूप जिन जमींदारों और सामन्तों को पदों, उपाधियों और जमीन के पट्टों का अधिकार मिला था, वे अपने ब्रिटिश स्वामियों को खुश करने के लिए भारतीय जनता के उत्पीड़न में उनके सहायक और सहयोगी थे। इस तरह जनता इस उत्पीड़न की दोहरी मार से त्रस्त थी।

इन्हीं के साथ कुछ मध्य-वर्गीय पढ़े-लिखे लोग भी नौकरियों और अन्य सुविधाओं के लोभ में ब्रिटिश शासन के उत्साही समर्थकों के रूप में सामने आ रहे थे। ऐसा लगता था कि समूचा भारतीय समाज जैसे दो भागों में बँट गया था। इन्हीं सब की प्रतिक्रिया में बहुत बड़ी संख्या में वे लोग भी थे जो पश्चिम से इस सांस्कृतिक मुठभेड़ के बाद अपनी सांस्कृतिक जड़ों की तलाश और वापसी की दिशा में सक्रिय थे।

1875 ई. में आर्य समाज की स्थापना हो चुकी थी। उसकी तत्कालीन भूमिका को देखते हुए आर्य समाज एक प्रगतिशील सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन के रूप में अपनी पहचान बना रहा था। बाल विवाह का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन और स्त्री शिक्षा की आवश्यकता आदि उसके कुछ ऐसे ही प्रगतिशील पक्ष थे। यह बात अलग है कि 'शुद्धि आन्दोलन' के नाम पर मुस्लिम विरोध की आक्रामकता भी उसका एक मुख्य एजेंडा था और इसका भरपूर लाभ भी ब्रिटिश सरकार ने उठाया। इसी तरह आगे चलकर ब्रिटिश सरकार द्वारा आर्य समाजी गुरुकुलों और अन्य शिक्षण संस्थाओं को मिलने वाले आर्थिक अनुदान उसके प्रति आर्य समाज के दृष्टिकोण को बिना प्रभावित किए नहीं रहता। इसी के परिणामस्वरूप उसका विरोध और आक्रामक चरित्र ब्रिटिश सरकार और उसकी नीतियों के समर्थन में ढलने लगा था।

वस्तुतः प्रेमचन्द से पूर्व युग में हमारी साहित्य चेतना दो प्रमुख प्रवृत्तियों से परिचालित थी। एक प्रवृत्ति मनोरंजन की थी, दूसरी सामाजिक जागरण की। इस कालखण्ड के उपन्यासों में जिस समाज का अंकन हुआ है, वह उच्च मध्यवर्गीय समाज है। समाज का निचला वर्ग, यहाँ तक कि निम्न और सामान्य मध्यवर्ग भी, इनमें अनुपस्थित है। देवरानी जेठानी की कहानी, वामा शिक्षक और भाग्यवती, तीनों में अपेक्षाकृत समृद्ध वैश्य, कायस्थ और ब्राह्मण परिवारों की जिन्दगी का अंकन किया गया है। केशवराम भट्ट, राधाकृष्ण दास, बालकृष्ण भट्ट और लाला श्रीनिवास दास के उपन्यास भी हिन्दू समाज के उच्च वर्ग का ही चित्रण करते हैं। वस्तुतः ये सभी लेखक उच्च या मध्यवर्ग के थे और अपनी समझ से 'राष्ट्र की तलाश' का प्रयत्न अपनी रचनाओं के माध्यम से कर रहे थे। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास मध्यवर्ग की माँग के फलस्वरूप नहीं, वरन् एक प्रकार की प्रच्छन्न राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में सामने आया।

बंगाल से चली नवजागरण की धारा सातवें दशक में हिन्दी क्षेत्र को भी स्पर्श करने लगी और गिनती के प्रबुद्ध लोगों ने भारतीय समाज में जागरण का अलख जगाना शुरू किया। राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द, राजा लक्ष्मण सिंह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं. बालकृष्ण भट्ट आदि इसी नयी चेतना के उद्वाहक थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 ई. में आर्य समाज की स्थापना कर हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण की चेतना को आन्दोलन का रूप दे दिया। हिन्दी क्षेत्र की नवजागरण चेतना, राष्ट्रीय चेतना से प्रच्छन्न रूप से जुड़ी हुई थी।

1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम ने और उसके बाद हुए उपनिवेशवादी दमन ने हिन्दी भाषी क्षेत्र में एक प्रच्छन्न राष्ट्रीयता बोध पैदा कर दिया था। हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के विकास, स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, कल-कारखानों की उन्नति, पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के प्रचार, भारतीय वाणिज्य

Vol. 12, Issue: 03, March: 2023
ISSN: (P) 2347-5412 ISSN: (O) 2320-091X

व्यवसाय की उन्नति आदि के समर्थन तथा बालविवाह, वृद्धविवाह, शादी-विवाह के अवसरों पर होने वाले अपव्यय, अन्धविश्वास, तर्कहीन सामाजिक व्यवहार आदि के विरोध में किए जाने वाले आंदोलनों के रूप में यह चेतना प्रकट हो रही थी। आधुनिक हिन्दी साहित्य इस चेतना का सशक्त माध्यम बना। हिन्दी उपन्यास इस राष्ट्रीय चेतना की ही अभिव्यक्ति था।

आठवें दशक के चार प्रमुख 'नवल' कथाकारों– गौरी दत्त, ईश्वरी प्रसाद, कल्याण राय और श्रद्धाराम फिल्लौरी – ने स्त्री शिक्षा के पक्ष में ही नहीं, तर्कहीन सामाजिक व्यवहारों के विरोध में भी 'नवल' कथाएँ लिखीं। उन्होंने वाणिज्य व्यवसाय की उन्नति, स्त्रियों के स्वावलम्बन, विधवा विवाह आदि पर भी जोर दिया। इस दशक के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का बिगुल फूँक दिया, जिसके स्वर में स्वर मिलाकर केशवराम भट्ट, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, लाला श्रीनिवास दास आदि ने प्रच्छन्न, पर प्रखर रूप में अपने राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति उपन्यासों के माध्यम से की।

इन उपन्यासों में भी स्त्री विषयक सुधारवादी विचारों का प्रतिपादन किया गया है, पर इनमें देशहित, देशोन्नति, देशोत्थान, चरित्र-निर्माण आदि के प्रश्न अधिक तत्परता के साथ उभारे गये हैं। केशवराम भट्ट और लाला श्रीनिवास दास ने देश में उद्योग-धन्धों की उन्नति, स्वावलम्बन, ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा आदि पर अधिक बल दिया है। लाला श्रीनिवास दास ने अंग्रेज सौदागरों की धूर्तता और चालाकी का चित्रण कर भारतीय व्यवसायियों को उनसे सावधान रहने की सलाह दी है। नवयुवकों द्वारा अंग्रेजों के रहन-सहन की नकल की आलोचना कर लाला जी ने उस खतरे की ओर संकेत किया है, जो भारत की अस्मिता और पहचान को नष्ट करने वाला था।

एक बड़ी महत्वपूर्ण बात यह है कि इन उपन्यासकारों ने भारतीय समाज में 'एका' के अभाव पर अपनी चिन्ता व्यक्त की है। हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता की समस्या भी कम से कम एक उपन्यास 'निस्सहाय हिन्दू' में उठाई गयी है। भट्ट जी ने भारतीय जनता में 'एका' के अभाव का कारण 'बाहरी' लोगों के अधिकार जमा लेने की बात तक कह डाली है। उन्होंने युवकों के चरित्र निर्माण को देशोत्थान के लिए आवश्यक माना है। हिन्दू समाज में व्याप्त धार्मिक पाखंडों की आलोचना भी उन्होंने अपने उपन्यासों में की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में राष्ट्र और राष्ट्रीयता का स्वर प्रमुख था। इस राष्ट्र और राष्ट्रीयता का आशय था– अपनी एक भाषा हो, जहाँ की स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी हों, युवक चरित्रवान हों, समाज अन्धविश्वास और तर्कहीन रीति-रिवाजों से मुक्त हो, जहाँ ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का भरपूर प्रसार हो तथा समाज के विभिन्न वर्गों में एकता और सामंजस्य हो। विदेशी शासन से मुक्ति का सीधा प्रश्न नहीं उठाया गया, जो ब्रिटिश शासन की दमनपूर्ण नीति को देखते हुए शायद सम्भव भी नहीं था, पर उनका 'देशहित' और 'देशोत्थान' औपनिवेशिक शासन से मुक्ति का ही प्रच्छन्न रूप है।

संदर्भ :

- मिश्र, शिवकुमार : *दलित साहित्य का आंदोलन और हिन्दी क्षेत्र*, नया पथ, अंक 24-25, 1997
- नामवर सिंह : *हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ*, अक्टूबर-दिसम्बर, 1983
- कँवल भारती : *दलित विमर्श की भूमिका*
- जोतिबा फुले : *गुलामगिरी*
- *भारतेन्दु ग्रंथावली, भारत दुर्दशा*
- *प्रेमधन सर्वस्व*
- हेमन्त शर्मा : *भारतेन्दु समग्र* (मेहदावल यात्रा)
- प्रो. गोपाल राय : *हिन्दी उपन्यासों का इतिहास*
- मधुरेश : *हिन्दी उपन्यास का विकास*